CHAPTER 21

HINDI

Doctoral Theses

110. अग्रवाल (अलका)
स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास : नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में ।
निर्देशक : प्रो. नित्यानन्द तिवारी
Th 14257

सारांश

सृष्टि का आधा सच अर्थात स्त्री, की सामाजिक स्थिति कुछ विशिष्ट अपवादों को छोड़ कर मूलतः 'अधीनस्थ' ही रही है । युगों की लिंग वर्चस्ववादी मनोवृत्ति एवं पुरुष के अहम् और चलाकी भरी सोच ने न केवल उसका शारीरिक अपितु मानसिक शोषण करके उसे 'वस्तु', 'अन्या', 'कमतर सृष्टि' की स्थिति में परिणत कर दिया है । नारीवाद इसी मनोवृत्ति के खिलाफ स्त्री की 'स्वसिद्धि की संघर्ष यात्रा है । प्रस्तुत शोध में स्त्री की अधीनस्थता के ऐतिहासिक, सामाजिक कारणों की तलाश करते हुए साहित्य में उसकी उपस्थिति का रेखांकन करने का प्रयास किया गया है । नारीवाद वस्तुतः न कोई आन्दोलन है न ही कोई नारा, बल्कि वैचारिक, मानसिक एवं भावनात्मक धरातल पर स्त्री द्वारा स्त्री से, समाज से स्वसिद्धि के लिए किया जाने वाला एक सार्थाक, सोद्देश्य संघर्ष है । बदले हुए इस परिवेश में उसे अपने निर्णय खुद लेने होंगे । पुरुष को भी व्यवस्था में प्राप्त सुविधाओं को छोड़ना पड़ेगा । कम से कम एक वर्ग तो ऐसा है जो इसके लिए प्रस्तुत दिखाई देता है । स्त्री पुरुष की स्वस्थ मानसिकता, पारस्परिकता, ईमानदारी विश्वास एवं परस्पर स्वीकृति के बीच ही 'जेन्डर जस्टिस' संभव है । यहां न किसी का विरोध है न किसी का समर्थन बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी मानवीय गरिमा में देखें, समझे और स्वीकार किए जाने की जरूरत है । अंत में मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में 'यही सदी अस्तित्व की थी अगली सदी व्यक्तित्व की होगी ।'

विषय सूची

1. नारीवाद : एक अन्वीक्षण 2. भारतीय परम्परा में स्त्री 3. भारतीय धर्म में स्त्री 4. भारतीय मिथक में स्त्री 5. स्त्री मुक्ति बनाम व्यवस्था का वर्चस्व 6. उत्तरशती

के उपन्यास : पुरुष उपन्यासकारों के सन्दर्भ में 7. उत्तरशती के उपन्यास : स्त्री उपन्यासकारों के सन्दर्भ में । उपसंहार । सन्दर्भ ग्रंथ ।

111. अग्रोयी (अमित)

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन ।

निर्देशक : डॉ. मुकेश अग्रवाल

Th 14258

सारांश

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करते समय उनके निबंधों को ललित तथा ललितेतर निबंधों में बाँटा गया है । ललितेतर निबंधों के अंतर्गत उनके ललित निबंधों को छड़ोकर शेष सभी निबंधों को समाहित कर लिया गया है। विद्यानिवास मिश्र जी के ललित तथा ललितेतर निबंधों के भाषावैज्ञानिक अध्ययन करने पर सामने आए निष्कर्ष पर विचार किया गया है । यह कहा जा सकता है कि मिश्र जी के ललित निबंधों की भाषा जहाँ अनौपचारिक, लोक से जुड़ी हुई तथा लालित्यपूर्ण है वहीं उनके ललितेतर निबंधों की भाषा औपचारिक, शास्त्रीय तथा गांभीर्यपूर्ण है । भाषा के दोनों ही प्रकारों के प्रयोग में मिश्र अत्यधिक सफल माने जा सकते हैं । पं. विद्यानिवास मिश्र के ललित तथा ललितेतर दोनों ही निबंध भाषावैज्ञानिक दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के निबंध ठहरते हैं । उनके ललित निबंध की भाषा जहाँ लोकोन्मुख है वहीं उनके ललितेतर निबंधों की भाषा शास्त्रोन्मुख है । भाषा में लोक तथा शास्त्र का यह संतुलन देखने योग्य है ।

विषय सूची

1. निबंध : अर्थ एवं प्रकार 2. विद्यानिवास मिश्र का निबंध साहित्य 3. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का ध्वनि की दृष्टि से अध्ययन 4. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का शब्द की दृष्टि से अध्ययन 5. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का रूप की दृष्टि से अध्ययन 6. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का वाक्य की दृष्टि से अध्ययन 7. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों का अर्थ की दृष्टि से अध्ययन 8. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंधों में बिम्बात्मकता 9. विद्यानिवास मिश्र के ललितेतर निबंधों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन । उपसंहार। ग्रंथ सूची ।

112. उपाध्याय (संज्ञा)

हरिशंकर परसाई की कहानियों में जनतंत्र का स्वरूप।

निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

Th 14269

सारांश

यह विषय केवल हरिशंकर परसाई की कहानियों का अध्ययन करने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि भारतीय जनतंत्र के यथार्थ एवं आदर्श, दोनों रूपों का साहित्यिक अध्ययन करने की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । यह शोधकार्य हिन्दी कहानी की यथार्थवादी परंपरा को सांप्रतिक सन्दर्भों से जाड़कर देखने-दिखाने की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक है । हरिशंकर परसाई की कहानियों में जनतंत्र का जो स्वरूप दिखायी देता है, वह कोई आदर्श जनतंत्र न होकर कई दृष्टियें से एक विकृत किसम का जनतंत्र है । इसमें जनता को चुनावों में भाग लेकर अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार तो है, लेकिन यह अधिकार सैद्धांतिक ही अधिक है, व्यावहारिक कम । चुनावों में होने वाले मिथ्या प्रचार अभियानों, नेताओं द्वारा किये जाने वाले झूठे वायदों, मतदान में होने वाली गड़बड़ियों, जातिवाद और क्षेत्रवाद जैसी चीजों के आधार पर वोट बटोरने की कोशिशों, चुनावों से ठीक पहले कराये जाने वाले सांप्रदायिक दंगों आदि के कारण तो देश की चुनाव-प्रक्रिया बाधित होती ही है, जनता के अज्ञान और सामंती सोच के कारण भी जन-प्रतिनिधियों का निर्वाचन उचित रूप में नहीं हो पाता । हरिशंकर परसाई ने अपनी कहानियों में भारतीय जनतंत्र की ऐसी कमजोरियों को यथार्थवादी किन्तु व्यंग्यपूर्ण दृष्टि से उजागर करते हुए उनकी आलोचना की है । उनकी इस आलोचना का उद्देश्य भारतीय जनतंत्र की कमियों और कमजोरियों को दूर करना तथा जनतंत्र के एक बेहतर स्वरूप की ओर संकेत करना है । उनके विचार से सच्चा जनतंत्र वही हो सकता है, जिसमें जनता का शासन नाममात्र के लिए नहीं, बल्कि वास्तव में जनता का शासन हो।

विषय सूची

1. हिन्दी कहानी में हरिशंकर परसाई का महत्त्व 2. स्वातंत्रयोत्तर भारत का यथार्थ और हरिशंकर परसाई की कहानियाँ 3. जनतंत्र की अवधारणा और भारतीय जनतंत्र 4. हिरशंकर परसाई की कहानियों का रूप और वस्तुतत्त्व 5. हरिशंकर पारसाई की कहानियों में जनतंत्र का स्वरूप । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

113. कविता

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व ।

निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्र नाथ सिंह

Th 14267

सारांश

डॉ. नरेन्द्र कोहली ऐसे भाषा-प्रयोक्ता हैं जिन्होंने अतीत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करते हुए अपने पौराणिक उपन्यासें में अपेक्षाकृत परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया है । भावगांभीर्य से युक्त भावानुकूल, पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल उनकी भाषा अत्यंत शिष्ट, संयत और तत्सम प्रधान है । लेखक ने पात्रों की मनःस्थिति के आधार पर वाक्यों का गठन किया है; विविध मनोभावों के अनुकूल वाक्य में भिन्नता आई है जिससे भाव स्पष्ट करने में भाषा पूर्णतया सक्षम हो गई है । भाषा उन बौद्धिक प्रश्नों को पूर्णतया स्पष्ट करती है जो लेखक ने अध्यात्म चिंतन को लेकर पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से प्रस्तुत किए है । पौराणिक कथ्य को लेकर लिखे गए अपने उपन्यासों में लेखक छह भाषायी शब्दों के प्रयोग से बचे हैं । यूरोप की भाषा के पूर्तगाली, फ्रांसीसी व अंग्रेजी शब्द तथा मध्य एशिया की भाषा के अरबी, तुर्की व फारसी शब्दों के प्रयोग 'न' होने के प्रति वे बेहद सावधान रहे हैं। प्रायः उपन्यास की भाषा में यह शब्द सहज ही प्रवेश कर जाते हैं । बिंब-सृजन के माध्यम से लेखक ने घटना का ज्यो का त्यों चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर भाषा में जीवंतता उत्पन्न की है। लक्षणा, व्यंजना, अलंकार, मुहावरों और लोकोक्तियों का सशक्त प्रयोग किया है । परम्परित उपमानों की अपेक्षा मौलिक उपमानें की सृष्टि की है । अभिव्यक्ति शिल्प के स्तर पर लेखक ने अपने इस उपन्यास में अनेक पद्धतियों को अपनाया है । व्यंग्यात्मक या विनोदपूर्ण शैली के माध्यम से पात्रों के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित किय है। डायरी शैली ने पात्रों की अंतरंगता के अध्ययन-विश्लेषण में विशेष सहायता पहुंचाई है। सूक्तिपरक, वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक तथा मनावैज्ञानिक शैली ने उपन्यास के कथ्य-कथानक तथा चरित्रों को स्पष्ट किया है । शैली के माध्यम से लेखक ने पात्रो के व्यक्तितव की विशेषताओं -स्पष्टता, पारदर्शिता, वाचालता आदि को स्पष्ट किया है । शिल्पिक स्तर पर अभ्युदय, महासमर व अभिज्ञान को एक विशिष्ट अभिजात्य प्रदान किया गया है। विवेचन-विश्लेषण या आकलन के आधार पर नरेन्द्र कोहली के पौराणिक विषयों पर आधृत उपन्यासें को हिन्दी-साहित्य की एक अन्यतम उपलब्धि कह सकते हैं।

विषय सूची

1. पृष्ठभूमि 2. पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व : राजनीतिक परिदृश्य 3. पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व : सामाजिक परिदृश्य 4. पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व : आर्थिक परिदृश्य 5. पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्वः धार्मिक परिदृश्य 6. पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व : दार्शिनिक परिदृश्य 7. भाषा के स्तर पर पौराणिकता और आधुनिकता का द्वंद्व । उपसंहार । परिशिष्ट। ग्रंथ सूची।

114. कुमार (राजहंस)

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों की हिन्दी कविता : बाज़ार और राजनीति का संदर्भ ।

निर्देशक : डॉ. रामेश्वर राय

Th 14272

सारांश

बीसवीं सदी खत्म हो चुकी है इक्कीसवीं सदी प्रारंभ । बहुत कुछ बदल रहा है - मनुष्य, उसकी जीवन पद्धति, उसका पर्यावरण, उसका गीत, उसकी कविता । निश्चित रूप से इन परिवर्तनों एवं परिवर्तनों की त्वरिता के केंद्र में जो अवधारणा है वह है - ग्लाबल स्तर पर बाज़ार एवं लोकल स्तर पर राजनीति । विषय अपने समय के दो सबसे प्रसिद्ध मुहावरों बाज़ार एवं राजनीति को पिछले दो दशक की कविता के संदर्भ में समझने की कोशिश है । शोध कार्य में शामिल किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण कवियों के नाम इस प्रकार है अशोक वाजपेयी, अरुण कमल, कुमार अंबुज, निलय उपाध्याय, बद्रीनारायण, संजय, कुन्दन, राजेशजोशी, मंगलेश डबराल, विष्णु खरे, प्रमरंजन अनिमेष, चन्द्रकांता देवताले, कात्यायनी, महेश आलोक इत्यादि। इस संदर्भ में दो बातों का ध्यान रखा गया है । एक तो यह कि शोध के लिए कविता लक्ष्य है कवि नहीं । दूसरे अंतिम दो दशकों की कविता का तात्पर्य समय से नहीं बल्कि काम से है । नए काम से, जो ठीक पिछली पीढ़ी की कविता से भिन्न है । शोध कार्य में शामिल की गई कविताओं का आधार वह नया मूड है जिसे कविता ने धरा की नवीन परिस्थितियों में पहचाना है । बीसवीं सदी के पटाक्षेप ने एक संक्रमणशील समाज का निर्माण किया हे बदलते हुए इस समाज में मनुष्य सर्वाधिक निरीह स्थिति में है । वह अपने परिवेश में उपजे सत्ताकेन्द्रों- बाजार और राजनीति से अपनी और अपने भविष्य की सुरक्षा चाहता है । कविता इस जरूरत को समझती है । वह अपने तमाम ऊर्जा से इसका विरोध करती है एवं मनुष्य को एक सुनहरे भविष्य की कल्पना देती है ।

विषय सूची

1. समकालीन भारत 2. बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों का वेचारिक परिदृश्य 3. कविता और बाजार (संदर्भ अंतिम दो दशक) 4. कविता एवं राजनीति 5. अंतिम दो दशक की कविता का शिल्प विधान । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

115. कृष्ण मोहन

केशव के काव्य में लोक-संस्कृति।

निर्देशक : डॉ. अवनिजेश अवस्थी

Th 14263

सारांश

केशवदास ने दरबारी वातावरण में रहते हुए भी लोक तथा संस्कृति का आँचल नहीं छोड़ा । कवि दृष्टि ने गाँव तथा नगरों में फैले जन समुदाय का वर्णन किया है जो अपनी रूढ़ियों तथा परम्पराओं में आबद्ध होकर सहज जीवन व्यतीत कर रहा है। जिसे 'लोक' कहकर अभिहित किया जाता है । "संस्कृत" शब्द का सम्बन्ध संस्कार अथवा संस्मरण से है जिसका अभिप्राय शुद्धि, सुधार, संशोधन तथा परिमार्जन होता है । संस्कार व्यक्ति की तरह समाज के भी होते हैं । अतः मानव समाज के लौकिक और पारलौकिक कार्य व्यापार जो उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हुए सर्वांगीण जीवन का निर्माण करते हैं वही संस्कार या संस्कृति कहे जाते हैं । लोक संस्कृति किसी भी देश, जाति अथवा समाज की आत्मा होती है । इसमें उस विशेष जाति, देश अथवा समाज के चिंतन-मनन, आचार-विचार, रहन-सहन रीति-रिवाज, पर्वोत्सव, बोली, भाषा, वेशभूषा आदि तत्वों का समावेश होता है । कवि केशवदास के काव्य में चित्रित लाके संस्कृति की झलक भी दिखाई पड़ती है, अतः उन्होंने तत्कालीन लोक को अपने काव्य में सजीव एवं उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है । उनकी यह लोक संस्कृति परक दृष्टि वर्तमान भौतिकतावादी जीवन और अपसंस्कृतिकरण की इस दौड़ में निश्चित रूप से एक सम्बल प्रदान करेगी । केशवदास के काव्य विषयक विभिन्न विद्वानों के प्रयास सराहनीय हैं । केशव रीतिकाल के पुरोधा तथा जागरूक आचार्य एवं कवि थे । सामन्तीय वातावरण में पलने वाला उनका कलाकार अपने व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण परिवेश से असंपृक्त नहीं था । भारतीय संस्कृति से कवि का निकटस्थ सम्बन्ध था, क्योंकि समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा के कुलीन वंश में उनका जन्म हुआ था । भारतीय वाङ्मय के विशद् अध्ययन से उनका संस्कृति-संस्कार संवर्धित एवं राजाश्रय में संपोषित हुआ था । उनकी भाषा में एक ओर प्राचीन शब्दावली की समृद्धि है तथा दूसरी ओर

तत्कालीन कथ्य-भाषा की सजीवता एवं ताजगी ।

विषय सूची

1. लोक संस्कृति : अर्थ और स्वरूप विवेचन 2. केशवदास तथा उनका रचना संसार 3. रीतिकालीन परिस्थितियाँ तथा केशव के काव्य में अभिव्यक्ति लोकजीवन 4. केशव के काव्य में अभिव्यक्त समाजिक-सांस्कृतिक जीवन और लोक संस्कृति 5. केशव के काव्य में अभिव्यक्त धार्मिक भावनाएं और लोक संस्कृति 6. केशव की काव्यभाषा में अभिव्यक्त लोक संस्कृति । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

116. चित्रा देवी

बिहारी-सतसई और वृन्द-सतसई का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : पूरनचन्द टण्डन

Th 14266

सारांश

बिहारी एक मात्र रचना के बल पर हिन्दी साहित्य के शीर्ष कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं । बिहारी सतसई शृंगारिक रचना होने पर भी अनेक विषयों को अपने में समेटे हुए हैं । वहीं वृन्द-सतसई में नीति का व्यापक स्तर पर समावेश हुआ है । फिर भी वृन्द ने शृंगार, भक्ति, ज्योतिष आदि अनेक विषयों का उल्लेख कर इस भ्रांति को दूर कर दिया कि यह केवल नीतिपरक रचना है । बिहारी और वृन्द ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने विशुद्ध रूप से सतसइयों की रचना की है । उनका महत्त्व अक्षुण्ण है । उनकी प्रासंगिकता आज के वर्तमान युग में विद्यमान है । यह तुलनात्मक अध्ययन इसी आधार पर किया गया है ।

विषय सूची

1. तुलनात्मक अध्ययन : स्वरूप महत्त्व एवं आधार 2. सतसई साहित्य : स्वरूप, परम्परा एवं प्रकार 3. बिहारी और वृन्द : जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व 4. बिहारी सतसई और वृन्द सतसई में नीति तत्त्व 5. बिहारी सतसई और वृन्द सतसई में शृंगार भक्ति, प्रेम एवं प्रकृति 6. बिहारी सतसई और वृन्द सतसई में विषय-वैविध्य 7. बिहारी सतसई और वृन्द सतसई में लोक-संस्कृति 8. बिहारी सतसई और वृन्द सतसई का भाषा-सौष्ठव । उपसंहार । सन्दर्भ ग्रंथ सूची ।

117. झा (हेमनाथ)
उपेक्षितों के सामाजिक सरोकार की रचनातमक अभिव्यक्ति : रेणु और नागार्जुन के कथा साहित्य के संदर्भ में ।
निर्देशक : डॉ. ज्ञानचंद गुप्त
Th 14261

सारांश

आधुनिक युग में, प्रेमचंद के बाद मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार और सामाजिक-राजनीतिक सम्बन्ध में बदलाव के कारण नागार्जुन एवं रेणु के समय एवं वातावरण में वह सीमा ढ़ीली हुई, जिससे उनके पूर्व का साहित्य बंधा हुआ था । 'मार्क्सवाद' समाज में पुरुषों के बराबर ही स्त्रियों के लिये भी अधिकार और कर्त्तव्य की बात करता है । इसलिये प्रगतिवादी साहित्य के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ 'नारी असिमता', 'दलितों के स्वाभिमान' और 'अन्य उपेक्षित वर्गों के व्यक्तित्व की तलाश' का सवाल भी प्रमुख रूप में उपस्थित हुआ । ये सभी समाज के शोषित वर्ग हैं । समाज में एक केंद्र के बदले कई उपकेंद्र का जन्म इतिहास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । आज के समाज में 'स्त्रीवादी-विमर्श', 'दलित-विमर्श' और 'अन्य उपेक्षित वर्गों के व्यक्तित्व की तलाश' ऐसे ही महत्त्वपूर्ण उपकेंद्र हैं । उपेक्षितों की यह तलाश ही हमें उपने इतिहास और परंपरा में ढांकने के लिये बाध्य करती है । और फिर जब हम ऐसा करते हैं तो प्रेमचंद के बाद नागार्जुन और रेणु के उपन्यासों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है नागार्जुन और रेणु के उपन्यासें का फलक बहुत व्यापक है । संपूर्ण शोध-प्रबंध में उनके उपन्यासों पर ही ध्यान केंद्रित किया गया है ।

विषय सूची

1. उपेक्षितों के सामाजिक सरोकार 2. उपेक्षितों के सामाजिक सरोकार की रचनात्मक अभिव्यक्ति :नागार्जुन एवं रेणु के उपन्यास के सन्दर्भ में 3. स्त्री और सामाजिक सरोकार 4. दलित और सामाजिक सरोकार 5. दरिद्र और अन्य उपेक्षित वर्ग और सामाजिक सरोकार 6. सामाजिक बदलाव में उपेक्षितों की भूमिका। उपसंहार । परिशिष्ट ।

118. दुआ (मीनू)
घनानंद के काव्य में लोक जीवन की अभिव्यक्ति ।
निर्देशक : डॉ. हरगुलाल
Th 14270

सारांश

रीति-स्वच्छंद कवियों में घनानंद का एक विशिष्ट स्थान है । इनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति भी विरह ही थी परन्तु इनके काव्य में जीवन का संगीत गुंजरित हो रहा है। उनकी साधना की यात्रा विरह के पथ पर अग्रसर होती दिखाई पड़ती है, लेकिन वहीं वह लोक जीवन को अपना साथी बना लेते हैं । घनानंद का काव्य शिष्ट वर्ग के लिए नहीं है । वह जनजीवन का संस्पर्श किये हुए है । लोक जीवन से इनका प्रगाढ़ परिचय था। फलतः उसका चित्रण इन्होने अत्यंत स्वाभाविक और सरस ढंग से किया है । घनानंद कला को कला के लिए नहीं मानते थे । उन्होंने उसे जीवन के साथ जोड़ा । घनानंद ने ब्रज की रज में विचरण किया । उन्होंने होली, दीपावली आदि त्यौहारों से हृदय के मनोभावों को अपनी अनुभूति से समन्वित कर आनंदोल्लासमय जीवन के चित्रण हमारे समक्ष रखकर ब्रज के सांस्कृतिक वैभव की ओर लोगों की दृष्टि खींची । घनानंद की लोक जीवन से निकटता है और उसके मानसिक प्रभाव का चित्रण बखूबी किया है । जहाँ इनकी अनुभूति लोक का स्पर्श लिए हुए है, वहीं अभिव्यक्ति भी लोक से असंपृक्त नहीं है । इनकी भाषा ठाकुर, बोधा आदि की अपेक्षा लाक्षणिक और व्यंग्यात्मक नहीं है, परन्तु उसमें लोक शैली, लोक छंद व लोक उपमानों का प्रयोग है । इनके काव्य में जीवन का संगीत गुंजरित हो रहा है । प्रस्तुत ग्रंथ में लोक जीवन की आत्मा से उद्‌भूत इसी गुंजार को सूनने और समझने का प्रयास किया है जो कि घनानंद के काव्य का नवीन चरण समझा जा सकता है । 'लोक' शब्द का प्रयोग उस समग्र जन संख्या के लिए किया जाता है जो निरक्षर अथवा अल्पसाक्षर है तथा ग्राम और जनपदों में निवास करती है। इन लोगों में प्रचलित रीति-रिवाज, विश्वास, मूढ़ाग्रह, विविध प्रथाएं, परंपरागत मान्यतायें, रूढ़ियाँ, कला, व्यवसाय, पर्व-उत्सव, रहन-सहन, आचार-विचार आदि का आकलन लोकजीवन के अध्ययन के विविध विषय हैं ।

विषय सूची

1. विषय प्रवेश 2. घनानंद का काव्य और उसमें निहित लोकतत्व 3. घनानंद के काव्य में लोक की कला और उसके विविध पक्ष 4. घनानंद के काव्य में वर्णित समाज और लोक जीवन का बाह्य रूप 5. घनानंद के काव्य में पर्व, उत्सव और त्यौहार 6. घनानंद के काव्य में परिवार का स्वरूप और उसका गठन 7. घनानंद के काव्य में विविध व्यवसाय और व्यवसायी 8. घनानंद के काव्य में आचार-विचार 9. घनानंद के काव्य में वर्णित प्रकृति और मनुष्य जीवन । उपसंहार। परिशिष्ट।

119. पाण्डेय (दर्शन)

समकालीन रंगचेतना और नाटककार शंकर शेष ।

निर्देशिका : डॉ. वीणा महाजन

Th 14260

सारांश

समकालीन नाटककारों में डॉ. शंकर शेष एक विशिष्ट नाम है । नाटककार शंकर शेष का उदय समाकलीन रंगान्दोलन के प्रारंभिक परिदृश्य में हुआ । डॉ. शेष की उत्कृष्ट रंग-चेतना युक्त रंगदृष्टि ने समकालीन हिन्दी नाटक तथा रंगमंच को विकसित किया । विषय की विविधता उनके नाटकों की मुख्य विशेषता रही । जहाँ उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक कथानकों के माध्यम से वर्तमान संदर्भों की नवीन व्याख्या की, वहीं सामाजिक-राजनैतिक नाटाकों में समकालीन व्यक्ति एवं समाज के जीवन के विविध पहलुओं को अपने नाटकों का कथ्य बनाया । शिल्प की दृष्टि से शंकर शेष के नाटक प्रयोगधर्मी सिद्ध हुए हैं । उनके नाटकों में दृश्यबंध, मंच सज्जा, चरित्र सृष्टि, संवाद योजना, नाट्यभाषा, प्रकाश, ध्वनि, गीत एवं संगीत योजना का जैसा विधान मिलता है । उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शंकर शेष की 'रंग चेतना' निःसंदेह उत्कृष्ट रही है । नाटककार शंकर शेष के नाटकों में रंगमंच के वास्तविक स्वरूप को विश्लेषित करना ही शोध का मुख्य उद्देश्य रहा है । यद्यपि शेष जी के नाटक रंगमंच की कसौटी पर खरे उतरते हैं, तथापि उनके कई ऐसे नाटक हैं, जिनका अभी तक मंचन नहीं हुआ है ं इस रूप में शेष जी के उन नाटकों के रंगमंचीय रूप को उभारने तथा उनके मंचन आदि की संभावनाओं की तलाश करने का स्तुत्य प्रयास इस शोध कार्य की महत्ती उपलब्धि कहा जा सकता है । शंकर शेष ने अपने नाटकों का सृजन रंगमंचीयता को दृष्टि में रखते हुए ही किया है । इनके सभी नाटक अभिनेयता की दृष्टि से अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर चुके हैं । समकालीन रंगचेतना को समृद्ध करने वाले नाटककारों जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश तथा लक्ष्मीनारायण लाल की भाँति डॉ. शंकर शेष ने भी रंग सापेक्ष नवीन रंग दृष्टि को केन्द्र में रखते हुए नाटकों का सृजन किया । उनके नाटक मंचीय विशेषताओं एवं संभावनाओं से सम्पन्न है । समकालीन रंगचेतना को समृद्ध बनाने में शंकर शेष का योगदान निःसंदेह लक्षणीय रहा है ।

विषय सूची

1. रंगचेतना विषयक अवधारणा 2. हिन्दी रंगमंच का विकास तथा युगीन रंगचेतना

3. समकालीन रंगाान्दोलन तथा प्रमुख हिन्दी नाटककारों की रंगचेतना 4. व्यक्तित्वांकन एवं सृजन कर्म 5. शंकर शेष की रंगचेतना और उनके नाटक। उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

120. पाण्डेय (मीना)

रीतिकालीन वीरकाव्य का मनोवैज्ञानिक विवेचन ।

निर्देशिका : डॉ. सरला चौधरी

Th 14319

सारांश

रीतिकालीन वीरकाव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के अनुसंधान का प्रयास है । रीतिकालीन वीर काव्य का मनोवैाानिक विवेचन प्रत्येक दृष्टि से तत्कालीन मनुष्य के प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होगा । शोध प्रबंध में रीतिकालीन वीरकाव्य के प्रवृत्तिग पक्ष का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है ।इस में न तो किसी एक कवि को संदर्भ मानकर उसे अतिरिक्त महत्त्व दिया है और न उसके सर्वपक्षीय विवेचन का अनावश्यक मोंह दिखाया गया है । अतः अध्ययन एक धारा की मूल काव्यगत संवेदतना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है । रीतिकालीन वीर साहित्य को परखने के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध विविध शंकाओं एवं भ्रांतियों का निवारण करने में पर्यापत सहायक सिद्ध होगा । अपार मनोभावों की मणियों को वीर काव्य संजोए हुए हैं। ये रचनाएँ समाज के प्रति अपने दायित्वों को जिस तरह पूर्ण करती है निश्चय ही रीतिकालीन वीर कवियों के विस्तृत एवं व्यापक दृष्टिकोण का परिणाम है । रीतिकाल के वीर भावना से प्रेरित ग्रंथों का विश्लेषण करते हुए उनके कवियों की अन्य शृंगारिक और काव्यशास्त्रीय विशेषताओं पर ध्यान नहीं दिया गया है । प्रस्तुत विवेचन में तत्कालीन साहित्य और समाज की राष्ट्रीयता से अनुप्राणित वीर भावना को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है। सामान्य रूप से प्रकाशित ग्रंथों एवं प्रकाशित काव्यांशों को ही अपने अध्ययन का आधार बनाया है । मनोवैज्ञानिक विवेचन में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का सायास थोपा नहीं गया है । अपितु आयास ही साहित्य की प्रकृति के अनुसार अपनाया गया है ।

विषय सूची

1. मनोविज्ञान तथा साहित्य से उसका संबंध 2. वीर काव्य की अवधारणा, स्वरूप और महत्त्व 3. रीतिकालीन वीर कवियों के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विवेचन 4. रीतिकालीन वीर काव्य में भावात्मक मनोविज्ञान 5. रीतिकालीन वीर काव्य का शैली मनावैज्ञानिक अध्ययन । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

121. बोरा (रेखा)
नरेश मेहता के उपन्यासों में परम्परा और आधुनिकता ।
निर्देशक : मोहनलाल कपूर
Th 14320

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में नरेश मेहता का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है । प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास में बदलाव की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी उसे जारी रखते हुए स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास की पारम्परिक प्रकृति में और भी कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए । इन उपन्यासकारों में नरेश मेहता भी शामिल थे और उन्होंने भी उपन्यास के परम्परागत ढाँचे को तोड़ा और उसे आधुनिकता से संपृक्त किया । इस प्रयत्न में परंपरा और आधुनिकता उनके उपन्यासों की अंतर्वसतु और शिल्प दोनों को निर्धारित और नियमित करती दिखाई देती है । जिसके निरूपण का प्रयास प्रस्तुत शोध कार्य में किया गया है । नरेश मेहता के उपन्यासों में परम्परा और आधुनिकता की भूमिका को जानने के लिए किया गया यह शोध मूलतः उनके उपन्यासों में नवीन और प्राचीन गतिशील तत्वों के उपयोग को समझने की एक कोशिश है । उन्होंने अपने उपन्यासों में एक ओर तो नए जीवन मूल्यों को प्रस्तुत किया है, दूसरी ओर परम्परागत सत्यों को नए संदर्भो में जांचा परखा है ।

विषय सूची

1. नरेश मेहता : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 2. नरेश मेहता : युग और परिवेश 3. नरेश मेहता का उपन्यास संसार 4. रचना में परम्परा और आधुनिकता 5. नरेश मेहता के उपन्यासों में परम्परा ओर आधुनिकता के संदर्भ 6. शिल्प के स्तर पर परमपरा और आधुनिकता । उपसंहार । सन्दर्भ ग्रंथ सूची एवं परिशिष्ट ।

122. भारद्वाज (नीतू)
प्रसाद की नाट्य संरचना में रस और द्वन्द्व की समन्वित भूमिका ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम
Th 14271

सारांश

जयशंकर प्रसाद प्रमुखतः रसवादी नाटककार हैं । उन्होंने आचार्य भरतमुनि के

'नाट्यशास्त्र' का गहन अध्ययन करके भारतीय रसवाद के अनुसार रस को नाटक की आत्मा स्वीकार किया है । नाटक की संरचना में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया है । प्रसाद ने नाटक की संरचना में रस के स्वरूप विषय में जिन सिद्धांतों को निर्धारित किया था उनका व्यावहारिक रूप में प्रयोग भी पर्याप्त परिमाण में हुआ है । प्रसाद का नाट्य साहित्य मुख्यतः प्राचीन भारतीय इतिहास की गौरव गाथाओं से मूल में प्रभावित रहा है । उन्होंने अतीत के गौरवगान के माध्यम से अपने युग में चल रहे सामाजिक आंदोलनों, सवतंत्रता संग्राम तथा व्यक्ति के आंतरिक एवं बाह्य संघर्ष को एक निश्चित दिशा प्रदान करने का रसात्मक प्रयास किया है । प्रसाद ने भारतीय रसवाद के अनुरूप रस को नाट्यात्मा मानकर प्रत्येक नाट्यकृति को रस की दृष्टि से आनन्दमयी स्वीकार किया है । उन्होंने केवल भारतीय ओर पापश्चात्य नाट्य परंपरा के प्रभावस्वरूप ही अपने नाटकों में रस और द्वन्द्व की योजना नहीं की अपितु अपने युग की संघर्षशील परिस्थितियों, घटनाओं, स्वाधीनता आन्दोलन, मानवीय समस्याओं आदि को और अधिक उत्साहपूर्ण स्वरूप में अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए की है । जिसके प्रभावस्वरूप जनसाधारण में उत्साह उत्पन्न हो सके । सहृदय में राष्ट्र प्रेम पुनजागृत हो जाए। इस प्रकार रसवादी, आत्मवादी नाटककार प्रसाद ने अपनी नाट्य संरचना में रस और द्वन्द्व की समन्वित भूमिका का उद्घाटन किया है । इन दोनों की समन्वित भूमिका के माध्यम से सृजनधर्मी, नाट्यधर्मी प्रसाद ने अपने नाटकों में भारत की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धरोहर को विदेशी आक्रमणकारी और षड्यंत्रकारी शक्तियों से सुरक्षा प्रदान करने का सराहनीय प्रयास किया है । प्रसाद युगीन स्वाधीनता आंदोलन में भारतीय राजनेताओं ओर समस्त जनसमुह की भूमिका भी विशेष महत्त्वपूर्ण रही है । प्रसाद के नाटकों में आधिकारिक, प्रासंगिक कथा-विन्यास के अंतर्गत पताका और प्रकरी की गौण कथाओं में, संवादों की बनावट और बुनावट में नाट्यकार्य के बीजवपन से लेकर चरमसीमा और निगति तक, पुरुषार्थ के प्रारंभ से लेकर फलागम तक द्वन्द्व और रस की समन्विति प्रसाद की नाट्य संरचना को हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में विशिष्ट बनाती है और कहना न होगा कि कथा-तंत्र, चरित्र-विकास, भाषा एवं संवाद-योजना के साथ-साथ समस्त विधान में यह विशेषता देशकाल-वातावरण के अनुरूप प्रसाद के नाट्य विचार से उत्पन्न हुई है।

विषय सूची

1. विषय विवेचन एवं स्थापनाएँ 2. प्रसाद का नाट्य चिन्तन 3. प्रसाद की नाट्य संरचना में रस और द्वन्द्व का सैद्धांतिक पक्ष 4. प्रसाद के पौराणिक नाटकों की संरचना में रस और द्वन्द्व का समन्वित रूप 5. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों की संरचना में रस और द्वन्द्व का समन्वित रूप 6. प्रसाद के प्रतीकात्मक नाटकों की संरचना में रस ओर द्वन्द्व का समन्वित रूप । उपसंहार। ग्रंथ सूची । परिशिष्ट।

123. मोहम्मद शबीर

आठवें दशक की हिन्दी कविता : अन्तर्वस्तु और संरचना के स्तर एवं रूप।

निर्देशक : डॉ. रमेश शर्मा (दिविक रमेश)

Th 14273

सारांश

शोध में उन काव्य-संग्रहों, कविताओं को अध्ययन का आधार बनाया गया है जिनके माध्यम से इस दशक की कविता की काव्य प्रवृत्तियों का निर्माण हुआ है । इस दशक से पूर्व एवं पश्चात के कवियों को भी अध्ययन का आधार बनाया गया है जो इस दशक की काव्य प्रवृत्तियों के अन्तर्गत आते हैं । इस दशक की कविताओं में समकालीन राजनीतिक व्यवस्था के कारण उपजी विसंगतियों को व्यंग्य एवं नाटकीयता के द्वारा रेखांकित किया गया है । इन व्यंग्य कविताओं की विशेषता है कि वह घटनाओं को भावुक होने से बचाती है और घटना को समूची भयावहता के साथ रखती है । यह व्यंग्य रचनाये समाकलीन जीवन के समक्ष ऐसी चुनौती उपस्थित करते हैं, जिसमें हम अपने यथार्थ की विडम्बना एवं अन्तर्विरोधों को गहराई से महसूस करते हैं बदलते बोध एवं परिवेश में कविता का स्वरूप भी बदल गया है । यह कविता भाषा, शिल्प, शैली की दृष्टि से श्रेष्ठ कविता कही जा सकती है । युग की संवेदना को स्वर देने के लिए कविता साज-सज्जा एवं अलंकरण को त्यागकर स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत हुई है । इनमें क्लिष्ट बिम्बों के स्थान पर सपाटबयानी एवं बोलचाल की भाषा को अपना आधार बनाया गया है । यह कविता व्यापक जनसंदर्भ और जनचेतना को लेकर सामने आती है वस्तुतः यह कविता कला को नहीं जनता को समर्पित है, कवियों का मुख्य लक्ष्य सृजनशीलता है ।

विषय सूची

1. अन्तर्वस्तु और संरचना : सैद्धान्तिक अध्ययन 2. स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिदृश्य 3. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य परिदृश्य 4. आठवें दशक की कविता : संवेदना के स्तर 5. आठवें दशक की कविता : संरचना के रूप 6. आठवें दशक की कविता : समग्र मूल्यांकन । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

124. वन्दना बिन्दलेश

सृजनशील भाषा का आधुनिक विन्यास और हरिशंकर परसाई का व्यंग्य-लेखन ।

निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

Th 14268

सारांश

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को एक ऐसा संपूर्ण साहित्यिक रूप प्रदान किया है जिसमें समाज में विद्यमान प्रभुशक्तियों के विभिन्न प्रकार के चरित्र, विभिन्न प्रकार की संस्थाएं, स्वार्थ और लोभ के तरह-तरह के रूप अभिव्यक्त हो जाते हैं । जिस तरह हर विद्यानुशासन के अपने मुहावरे और भाषागत विशेषताएं पैदा हो जाती हैं उसी तरह सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शैक्षिक, तथा विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के अपने मुहावरे और अनुषंग उभर जाते हैं परसाई के व्यंग्य में भाषा का विन्यास उन संस्थाओं के भीतरी मनोवैज्ञानिक वायुमण्डल को धारण करता है। इसलिए उनकी व्यंग्य भाषा का अध्ययन वस्तुतः संस्थाओं और उनमें काम करने वाले अधिकारियों, कर्मचारियों और उनसे प्रभावित होने वाली जनता का समाज-मनावैज्ञानिक अध्ययन भी है । परसाई ने सृजनशील भाषा का सामाजिक संदर्भों में आधुनिक विन्यास किया है। यह भाषा जीवन के विविध स्तरीय यथार्थ से अर्थ ग्रहण करती है । अनेकानेक अर्थछवियों का निर्माण करती है । जीवन से गहरे सरोकारों के बिना परसाई की भाषा की गहराई को नहीं समझा जा सकता । उनकी भाषा में प्रयुक्त फैंटेसी, बिम्ब, प्रतीक, मिथक वास्तविक जगत के किसी छद्म को उद्घाटित करने के कारण सहत सम्प्रेषणीय हो जाते हैं। भाषा के से विशिष्ट उपादान उनकी भाषा में अपने परम्परागत अर्थ से अलग नवीन अर्थों की व्यंजना करते हैं । अपने समकालीनों की तुलना में परसाई का अनुभव-संसार अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है । जीवन के अन्तर्विरोधों को खोल सकने की योग्यता उनकी भाषा ने अर्जित की है । भाषा की यह आन्तरिक शक्ति परसाई को आधुनिक रचनाकारों और शैलीकारों में विशिष्ट बनाती है ।

विषय सूची

1. सृजनशील भाषा का आधुनिक विन्यास 2. परसाई का रचना संसार 3. सृजनशीलता : परसाई का दृष्टिकोण 4. परसाई की व्यंग्य भाषा में निहित मानसिक रूझान 5. परसाई की व्यंग्य भाषा और विधा का प्रश्न । उपसंहार । ग्रंथ सूची।

125. शर्मा (मीना)
बिहारी-सतसई और राम-सतसई का तुलनात्मक अध्ययन।
निर्देशक : डॉ. पूरनचन्द टण्डन
Th 14264

सारांश

बिहारी-सतसई और राम-सतसई के बीच अंतःसूत्र स्थापित करते हुए उनका साम्य अथवा वैषम्य तो निर्धारित किया ही गया है साथ ही पारस्परिकता की खोज, रचना-भूमि और रचना-दृष्टि की पहचना भी की गई है । यह तुलनात्मक अध्ययन पाठक और आलोचकों से उनके दृष्टिकोण, पूर्वाग्रह में बदलाव अथवा पूनर्मूल्यांकन के लिए बाध्य करने का अपना मूल्य-निर्णय भी देता है । विशेषकर राम-सतसई के प्रति आलोचकीय उदासीनता को तोड़ने की मांग करते हुए उसे आलोचना जगत की मुख्यधारा में शामिल करने को विवश भी करता है । अतः इस उपेक्षित दृष्टि से मुक्ति और मूल्यांकन के केंद्र की परिधि का विस्तार करने के बिंदू पर उपसंहार का मुख्य बलाघात है ।

विषय सूची

1. तुलनात्मक अध्ययन : सीमाएं एवं संभावनाएं 2. बिहारीलाल और रामसहायदास जीवन, व्यक्तित्व तथा कृतित्व 3. सतसई : स्वरूप और परंपरा 4. बिहारी-सतसई और राम-सतसई में शृंगार व्यंजना 5. बिहारी-सतसई और राम-सतसई में रीति-निर्वाह का तुलनात्मक अध्ययन 6. बिहारी-सतसई और राम-सतसई में शृंगारेत्तर विषयों का तुलनात्मक अध्ययन 7. बिहारी-सतसई और राम-सतसई में लोक-संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन 8. बिहारी-सतसई और राम-सतसई के शिल्प पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन । उपसंहार । ग्रंथ सूची एवं परिशिष्ट ।

126. शर्मा (मोनिका)
कबीर और मुक्तिबोध : काव्य मन ।
निर्देशक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र
Th 14259

सारांश

कबीर और मुक्तिबोध दोनों ने ही अलग-अलग परिस्थितियों का सामना किया किन्तु फिर भी दोनों का यथार्थ बोध एक सामान्य धरातल पर आकर मिलता है । एक तरफ कबीर का सतत जागृत, ग्रंथि रहित व्यक्तित्व है तो दूसरी ओर मुक्तिबोध का भौतिक अभावों की भट्टी में तपा व्यक्तित्व । कबीर के पास हृदय की समस्त विकृतियों को मिटाकर निर्मलता प्रदान करने वाला रामरतन है तो मुक्तिबोध के काव्य में रक्तालोक स्नात पुरुष है जो अपने साथ जीवनदायी

क्रांतिचेता सूर्य की रश्मियां लाता है । कबीर, रैदास, नानक आदि संतों की बानियों में छिपी क्रांतिचेतना तत्कालीन सामाजिक ढ़ांचे के परिप्रेक्ष्य में अत्याधुनिक है । मुक्तिबोध अलग समय के होते हुए भी इसी भूमि पर इन संत कवियों के साथ ही खड़े हैं । मानवता सब धर्मों का सार है और सबसे ऊपर है । कवि मन अथवा साधक मन इसी परम सत्य को साक्षात्कार के पश्चात् अपने काव्य, अपनी साधना को सार्थक बना पाता है, आने वाली पीढ़ियों के लिए पथ-प्रदर्शक और प्रेरणादायक बना पाता है या सीधे-सादे शब्दों में कहा जाए तो देश-काल की सीमाओं से ऊपर उठकर ही विशिष्ट काव्य मन मानव मात्र के मर्मस्थान को छू पाते हैं । अंततः कहा जा सकता है कि लगभग प्रत्येक संदर्भ में मुक्तिबोध कबीर की काव्य परंपरा के और उनके काव्य मन के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं । यह सतत जागृत रहने वाली सामाजिक व अंतस् की चेतना कबीर की परम्परा से मिला उत्तराधिकार ही तो है । अपने-अपने समय की मानव-नियति को नियंत्रित करने वाली शक्तियों की गहरी समझ, दोनों ही कवियों में अनूठी थी । एक ने धर्म की सार्वजनिक शक्ति को पहचान कर उसकी दुर्बलताओं पर प्रखर प्रहार किया तो दूसरे ने राजनीति की पृष्ठभूमि में वर्तमान मनुष्य के जीवन की संभावनाओं को शाश्वत जिजीविषा के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया ।

विषय सूची

1. मानव मन और काव्य 2. कवि की मनोरचना और समाज 3. कबीर और मुक्तिबोध के काव्य-मन की अभिव्यक्ति 4. कबीर और मुक्तिबोध के काव्यमन की तुलना 5. अभिव्यक्ति पक्ष : कबीर ओर मुक्तिबोध । उपसंहार । ग्रंथ सूची । परिशिष्ट।

127. शर्मा (हर्षबाला)

समकालीन हिन्दी नाटकों में व्यवस्था-विरोध ।

निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

Th 14262

सारांश

आज के नाटककार पूर्णतया सजग हैं तथा उसकी नवीन दृष्टि समाज को एक नए दृष्टिकोण से देखती है तथा समाज को दिशा देने के लिए मूल्यों और वैचारिक मान्यताओं पर बल देती हैं। समकालीन नाटककार नवीन रचना मानसिकता के आधार पर भ्रष्टाचार, अनैतिकता, स्वार्थ-साधन का तिरस्कार करते हैं व मानवीय सृजनात्मकता को महत्व प्रदान करते हैं । कुल मिलाकर व्यवस्था-विरोध का

अर्ध है -ऐसी रूढिगत प्रणाली का विरोध करना जो मानव अस्मिता का न केवल हनन करती है बल्कि मनुष्य को मनुष्य होने के अधिकार से भी वंचित करती है। मानवीयता की रक्षा तथा सद्मूल्यों की स्थापना ही साहित्य का लक्ष्य है । सत् न्याय, धर्म की रक्षा करते हुए मानव को जीने का अधिकार प्रदान करना ही नाटक का उद्देश्य है । समाज को दिशा देने के लिए ही नाटककारों ने रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध किया तथा विकास की दिशा को प्रोत्साहित किया । यहां विरोध का अर्थ हिंसा न होकर अहिंसात्मक सोच से है जो तभी संभव है जब मानव ही नहीं मानव समाज भी विचार को महत्व दे व जीवन में सद्वृत्तियों को उतारने का प्रयास करें और इन सद्वृत्तियों को उभारना ही इस शोध-प्रबंध का मूल लक्ष्य है ।

विषय सूची

1. समकालीनता एवं व्यवस्था-विरोध : स्वरूप 2. समकालीन नाटक : युग व परिस्थितियाँ 3. पूर्ववर्ती नाटकों में व्यवस्था-विरोध 4. समकालीन नाटक : सामाजिक व्यवस्था-विरोध 5. समकालीन नाटक : आर्थिक व्यवस्था-विरोध 6. समकालीन नाटक : राजनीतिक-धार्मिक व्यवस्था-विरोध । उपसंहार । ग्रंथ सूची एवं परिशिष्ट।

128. सीमा रानी

रीतिकालीन नीतिकाव्य में अप्रस्तुत-विधान ।

निर्देशक : डॉ. सुधीन्द्र कुमार

Th 14265

सारांश

रीतिकालीन नीतिकाव्य शुद्ध नीति की व्याख्या हेतु रचित हुआ । नीतिकाव्य समाज के कल्याण तथा सांसारिक व्यावहारिकता की ज्ञानप्राप्ति के उद्देश्य से लिखा गया । रीतिकालीन रीतिकावियों में मुख्यतः वृन्द, गिरिधर कविराय, बैताल, सम्मन एवं दीनदयाल गिरि, घाघ-भड्डरी आदि आते हैं । इन नीतिकवियों द्वारा रचित रचनाओं में वृन्द कृत वृन्द सतसई, गिरिधर कृत कुण्डलियां, दीनदयालन गिरि कृत अन्योक्ति-कल्पद्रुम एवं बैताल की कुण्डलियां नैतिकता की दृष्टि से अत्युत्तम रचनाएं हैं । इन कवियों के कृतितव से ही रीतिकाल में नीतिकाव्य अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सका है । रीतिकालीन नीतिकाव्य में अप्रस्तुत-विधान बिल्कुल नवीन एवं मौलिक विषय है । किसी कवि द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों के अध्ययन से उसकी काव्य-निर्माण क्षमता का सोन्दर्यवोध और युगबोध का भी मूल्यांकन किया जा सकता

है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध का उद्देश्य इसी तथ्य की प्राप्ति है । नीतिकाव्य में अलंकार, बिम्ब, प्रतीक एवं शब्द-शक्ति आदि अप्रस्तुत विधान के स्वरूप विधायक अवयवों को ग्रहणकर नीतिकवियों ने किस प्रकार अपने काव्य में नियोजित किया, यह जानना भी शोध का उद्देश्य रहा है । रीतिकालीन नीतिकाव्य में काव्य कला की चकाचौंध भले ही न हो, परन्तु स्वानुभूतिपरक हृदय से निकले सीधे-सरल भावों की सरस एवं मार्मिक अभिव्यक्ति का सौन्दर्य अवश्य व्याप्त है। नीतिकवियों के अप्रस्तुत-विधान से सहृदय चमत्कृत ही नहीं होता, वरन् भावनाओं के मानसिक प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्रमाता के समक्ष कवि के अभिव्यक्त भाव का बिम्ब भी उपस्थित हो जाता है । अप्रस्तुत-विधान के विभिन्न रूपों द्वारा चित्रों में सांकेतिकता, भावात्मकता एवं सौन्दर्य का समावेश हो पाया है। वस्तुतः नीतिकाव्य में अप्रस्तुत-विधान प्रस्तुत की प्रभावी एवं मार्मिक अभिव्यंजना में सक्षम एवं सफल है ।

विषय सूची

1. अप्रस्तुत विधान : सैद्धान्तिक विवेचन 2. नीतिकाव्य : अभिप्राय, विकास एवं रीतिकालीन नीतिकवि 3. रीतिकालीन नीतिकवि : संक्षिप्त जीवन परिचय एवं कृतित्व 4. वर्ण्य सामग्री के स्रोतों के आधार पर रीतिकालीन नीतिकवियों का अप्रस्तुत-विधान 5. रीतिकालीन नीतिकाव्य में अलंकार रूप में अप्रस्तुत-विधान 6. रीतिकालीन नीतिकाव्य में प्रतीक एवं शब्द-शक्ति रूप में अप्रस्तुत-विधान 7. रीतिकालीन नीतिकाव्य में बिम्ब रूप में अप्रस्तुत-विधान । उपसंहार । ग्रंथ सूची।

129. सुधांशु (सुनील कुमार)
स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक हिन्दी नाटकों में रंगबोध ।
निर्देशक : डॉ. प्रभात कुमार
Th 14274

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक हिन्दी नाटकों में रंगबोधीय तत्वों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि आजादी के बाद भारतीय रंगकर्म के स्वरूप और रंगकर्मियों के उद्देश्यों में परिवर्तन होने के साथ पश्चिमी रंगमंच के साथ उसके रिश्ते में भी कई प्रकार से बदलाव आये । रंगकर्म की ओर अनेक ऐसे व्यक्ति आकर्षित हुए, जो नाटक और रंगमंच को सृजानात्मक अभिव्यक्ति का साधन मानते थे । उन्होंने पश्चिमी रंममंच के साथ-साथ रंगकला के श्रेष्ठ सृजनात्मक तत्वों और उद्देश्यों का अध्ययन कर उससे प्रेरणा ग्रहण की । यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद नाट्य रचनाकर्म में

प्रवृत्त होने वाले ऐतिहासिक नाटककार नवीन रंगचेतना और रंगबोध से संपन्न हो सके । नवीन रंगचेतना से संपन्न नाटककारों ने जितने नाटक लिखे, उन्होंने उसके प्रस्तुति पक्ष का भी पूरा ध्यान रखा । लेकिन यह नवीन रंगचेतना और रंगबोध उन स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक नाटकों में देखने को नहीं मिलता है, जो पुराने खेमे के स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों द्वारा लिखे गये । वे अपनी पुरानी परिपाठी, रंगमंच के प्रति अविकसित मानसिकता के तहत ही नाट्य रचनाकर्म में प्रवृत हुए । स्वतंत्रता के बाद जगदीशचुद्र माथुर के 'कोणार्क', 'शारदीया', मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', भीष्म साहनी के 'हानूश', 'कबिरा खड़ा बजार में', सुरेन्द्र वर्मा के 'सेतुबंध', 'आठवाँ सर्ग' आदि नाटकों में ऐतिहासिक आधार लिये गये है, लेकिन यहाँ इतिहास के मिथकों, पात्रों, घटनाओं के माध्यम से समकालीन जीवन की विसंगतियों, समस्याओं, मूल्य, विघटन, अनुतरित प्रश्नों को उठाया गया है । इन नाटकों को यथार्थवादी शिल्प में ढालकर भी अन्य संभावनाओं के लिए जगह छोड़ी गयी है । इन नाटकों की भाषा और संवाद को भी रंगतत्व से जोड़ा गया है । इन नाटकों में रंग-संकेतों को कोष्ठकों में या अन्य संवादेतर स्थलों पर नाटकीय व्यंजना के रूप में समायोति किया गया है । इस प्रकार, हम पाते हैं कि ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित नाटक, जो स्वतंत्रता के बाद नवरंग चेतना से युक्त नाटककारों द्वारा लिखे गये - ने हिन्दी नाटक और रंगमंच के संबंध को पारस्परिकता प्रदान कर एक नया मुहावरा दिया हे । वही नाटक आज सफल है, जिनके नाट्यालेखन में निर्देशकों, अभिनेताओं, दर्शकों की मौजूदगी होती है । इससे नाटककारों का निर्देशकों, अभिनेताओं के साथ परस्पर संवाद बना रहता है इस संवाद के बिना नाटककारों में भी संपूर्ण रंगबोध नहीं पनप पाता है । इनके परस्पर संवादों के कारण ही आज हिन्दी नाटक और रंगमंच में नये-नये प्रयोग हो रहे हैं, जो आगे के लिए शुभ संकेत हैं ।

विषय सूची

1. ऐतिहासिक नाटक : अर्थ और विस्तार 2. रंगबोध : अभिप्राय और स्वरूप 3. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक 4. स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक हिन्दी नाटकों में रंगबोध 5. स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक हिन्दी नाटक : रंगबोध की विशेषताएं और सीमाएं । उपसंहार । ग्रंथ सूची ।

130. हरदीप कौर

वृन्दावनलाल वर्मा तथा हजारीप्रसाद के इतिहासबोध का तुलनात्मक अध्ययन : उपन्यासों के सन्दर्भ में ।

निर्देशिका : डॉ. अर्चना शर्मा

Th 14318

सारांश

शोध प्रंबध में इतिहास और इतिहासबोध के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा वृन्दावनलाल वर्मा जी के इतिहासबोध को स्पष्ट करने के प्रयास किया गया है। आर्चाय हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा वृन्दावनलाल वर्मा ने एक ही विषय (इतिहास) को आधार बनाकर साहित्य रचना की है । दोनों ही ने इतिहास को सही रूप में समझने का प्रयास किया तथा पाठकों को भी यह अहसास कराया कि इतिहास में भी जीवन होता है और वह वर्तमान तथा भविष्य को प्रभावित करता है । वर्मा जी तथा द्विवेदी जी दोनों ही यह मानते हैं कि इतिहास के विषय में बात करना वर्तमान से पलायन करना नहीं है अपितु इतिहास के माध्यम से वर्तमान को देखना, ही आधुनिक होना है । दोनों ही उपन्यासकारों ने साहित्य का उद्देश्य को लेकर उन्होंने उपने उपन्यासों की रचना की है । इतनी समानताओं के होने के बाद भी कुछ भिन्नताएं भी है जो उनके महत्त्व को बनाए रखती है । सबके पहले भिन्नता उनके रचनाकाल की है । द्विवेदी जी का रचनाकाल दो विश्व-युद्धों के बीच तथा उसके बाद का है इस समय मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ तथा मानवता पर संकट गहराने लगा । इसलिए द्विवेदी जी के उपन्यासों में मानवीय समस्याओं तथा मानव मूल्यों के प्रश्नों को अधिक उठाया गया है । उनका साहित्य किसी एक देश की सीमा में बंधा न होकर विश्वस्तर पर मानव विकास की प्रेरणा देता है । मानव-विकास के लिए द्विवेदी जी ने गहराई से इतिहास की छानबीन की तथा वहां से ग्राह्य और जीवंत पक्षों को लेकर वर्तमान और भविष्य को संवारने का प्रयास किया । द्विवेदी जी के उपन्यास किसी भी आधुनिक उपन्यास से कम नहीं है । उनके उपन्यासों आधुनिकता के ऊपरी तत्वों को न लेकर, उन मानवीय मूल्यों को दर्शाया गया है जो सदा से ही मूल्यवान रहे है और आज उन्हें भुलाया जा रहा है । द्विवेदी जी के उपन्यासों में मानव कल्याण की भावना अधिक है तो वर्मा जी के साहित्य में अपने प्रदेश के भौगोलिक वातावरण, संस्कृति, परंपराओं को अधिक महत्त्व दिया गया है वर्मा जी के समय पूरा देश आजादी की लड़ाई लड़ रहा था। वर्मा जी ने भी इसी भावना से प्रेरित होकर अपने उपन्यासों में मुस्लिम आक्रमणकारियों की हार को दिखाया तथा पात्रों को भरपूर विश्वास और साहस की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है । वर्मा जी का एक उद्देश्य पाठकों के मन में राष्ट्र-प्रेम जाग्रत करना रहा है तो दूसरी ओर वह चाहते हैं कि उनके प्रदेश को भारत के नक्शे पर महत्त्वपूर्ण स्थान मिले । इसी कारण उनके उपन्यासों में विषय बुन्देलखण्ड ओर वहां के नायक ही रहे । मानव-कल्याण की भावना से भरपूर होने पर भी इस दृष्टिकोण के कारण उनके ऐतिहासिक उपन्यास देश और काल की सीमा मे बंध जाते हैं और उनका महत्त्व केवल कुछ समय विशेष के लिए रह जाता है जबकि द्विवेदी के उपन्यास इन सीमाओं से परे हैं और प्रत्येक काल में आधुनिक संदर्भों से युक्त रहते हैं ।

1. इतिहास और इतिहासबोध 2. हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की विकास परम्परा 3. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में इतिहासबोध 4. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में इतिहासबोध 5. वृन्दावनलाल वर्मा तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी के इतिहासबोध का तुलनात्मक अध्ययन । उपसंहार । ग्रंथ अनुक्रमणिका ।

M.Phil Dissertations

131. अजय कुमार
जिस लाहौर नइ देख्या, ओ जम्याई नई (असग़र वज़ाहत) की अन्तर्वस्तु ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

132. आजाद (विनोद)
आखरी कलाम (दूधनाथ सिंह) में युग बोध ।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

133. कंचन
कबिरा खड़ा बाज़ार में का समाजशास्त्रीय अध्ययन ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

134. कर्ण (अंजू)
स्त्री-विमर्श की प्रमुख समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में परिधि पर स्त्री ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

135. खान (सुरैया)
अनारो (मंजुल भगत) में स्त्री-विमर्श ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह

136. गुप्ता (नीरज)
शशिनाथ विनोद में जीवन-मूल्य ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

137. चौधरी (बबिता)
रामसतसई में बिम्ब विधान ।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

138. पंडित (अनीता)
अलंकार-चिंतामणि में अलंकार-निरुपण ।
निर्देशक : डॉ. एस एन अय्यर

139. पटेल (रविमोहन)
गिरिधर कविराय के काव्य में अप्रस्तुत विधान ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह

140. पूनम रानी
ठाकुर के काव्य में शृंगार-भावना ।
निर्देशक : डॉ. एस एन अय्यर

141. प्रदीप कुमार
दीपशिखा में प्रतीक विधान ।
निर्देशक : डॉ. तेज सिंह

142. बर्णवाल (रमेंश कुमार)
हिन्दी सामाचार पत्र और सूचना-क्रान्ति (2000-2004 तक) ।
निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

143. मिश्र (अवनीश)
क्याप (मनोहर श्याम जोशी) में उत्तर आधुनिक संदर्भ : संवेदना और शिल्प।
निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

144. मनोज कुमार
बहुवचन पत्रिका के साहित्यिक सरोकार ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

145. मीणा (बन्ना राम)
ठाकुर के काव्य में वक्रोक्ति ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

146. मेहता (रक्षा)
रघुवीर सहाय की कविताओं में व्यक्ति-अस्मिता ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

147. मेहदी (इफ्फत)
दूसरी कहानी (अलका सरावली) में स्त्री-विमर्श ।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

148. मोनिका
मोहन राकेश के नाटकों में पुरुष-पात्र ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

149. यादव (नूतन)
प्रिंट मीडिया में व्यावसायिक विज्ञापनों की भाषा ।
निर्देशक : डॉ. एस एन अय्यर

150. रविता
बोधा कृत इश्कनामा में बिम्ब-विधान ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

151. रस्तोगी (योगेश)
लोमड़ वेश (रामेश्वर प्रेम) का रंग-बोध ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

152. राकेश
दीनदयाल गिरि की काव्य-भाषा।
निर्देशक : डॉ. एस एन अय्यर

153. राजेश कुमार
दलित कथाकारों की कहानियों में स्त्री ।
निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

154. राणा (सविता)
दिमागे हस्ती, दिल की बस्ती है कहाँ -है कहाँ में आत्म निर्वासन।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

155. रावत (तनु)
कोर्ट मार्शल (स्वदेश दीपक) में सामाजिक चेतना ।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

156. लक्ष्मी
इसराइल के उपन्यास रोशन में मजदूर-समस्या ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

157. वर्मा (नीरू)
कबिरा खड़ा बाजार में (भीष्म साहिनी) और कहे कबीर सुनो भई साधो (नरेन्द्र मोहन) का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक : प्रो. रमेश गौतम

158. वर्मा (पूनम)
मुक्ति (अखिलेश) कहानी-संग्रह के सामाजिक सरोकार ।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

159. विमल (विधुकेश)
रावल की रेल (कमलेश्वर) कहानी-संग्रह के सामाजिक-राजनीतिक सरोकार ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह

160. शर्मा (अनु)
हरिवंश राय बच्चन की काव्य-संवेदना : निशा निमंत्रण, एकांत संगीत ओर आकुल अन्तर के संदर्भ में ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह

161. शर्मा (अपराजिता)
आचार्य रामचंद्र शुक्ल का छायावाद संबंधी मूल्यांकन ।
निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

162. शर्मा (दीप्ति)
अन्योक्ति कल्पद्रुम में लोक-संस्कृति ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

163. श्रीवास्तव (अंकित कुमार)
पद्माकर कृत जगद्विनोद का सौंदर्य-शास्त्रीय विवेचन ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

164. संजीता
बाढ़ का पानी (शंकर शेष) की अंतर्वस्तु ।
निर्देशक : डॉ. तेज सिंह

165. संतोष
कुलटा (राजेन्द्र यादव) में स्त्री-विमर्श ।
निर्देशक : डॉ. तेज सिंह

166. संतोष कुमार
अक्ष्यवट् (नासिरा शर्मा) के सामाजिक -सांस्कृतिक सरोकार ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह

167. सत्यप्रकाश सिंह
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की काव्यानुभूति की बनावट ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

168. सरिता
द्विजदेव के काव्य में रीति-तत्व ।
निर्देशक : डॉ. पूरनचंद टण्डन

169. सरिता
हंस-जवाहिर (कासिमशाह) में प्रेम-व्यंजना ।
निर्देशक : डॉ. कृष्णदत्त शर्मा

170. सुनयना (सीमा)
कोई बात नहीं (अलका सरावगी) : जीवन-संघर्ष ।
निर्देशक : डॉ. हरिमोहन शर्मा

171. सुनील कुमार
संत रज्जब अली के काव्य में सामाजिक-चेतना।
निर्देशक : प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल

172. सुशीला
लखनऊ मेरा लखनऊ (मनोहर श्याम जोशी) : अनुभव के आयाम ।
निर्देशक : डॉ. सुरेन्द्रनाथ सिंह